वार्षिक सदस्यता शुल्क - रु. २५/-

स्वानुभूतिप्रकाश

प्रकाशक :
श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट
भावनगर - ३६४ ००१.

पूज्य श्री निहालचंद्र सोगानीजी की ११२ वीं जन्मजयंती पर कोटीकोटी वंदन

पूज्य गुरुदेवश्री के महापुराणका यह एक पात्र है। सोनगढ़की तीर्थभूमि-इस तीर्थभूमिमें सम्यक्दर्शनरुपी सपूत कोई जागा नहीं था, तब तक जो-जो धर्मात्मा हुए वे सोनगढ़ भूमिमें नहीं हुए, अलग-अलग भूमि पर हुए हैं। जबकि गुरुदेवकी यह जो साधनाभूमि है, इस साधनाभूमिको साधनाकी एक नयी यशकलगी लगी और यह भूमि भी फलवंती हुई और एक फल पका-वे सोगानीजी हैं। पूज्य सोगानीजीका बहुमान, यह सिर्फ एक व्यक्तिका बहुमान नहीं है, यह सम्यक्दर्शनका बहुमान है और जो-जो सभी सम्यक्दर्शन धारक महात्माएँ हैं, धर्मात्माएँ हैं, उन अनंत-तीनों कालके धर्मात्माओंका बहुमान है, सन्मान है।

- पूज्य भाईश्री शशीभाई

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५४९, अंक-३०५, वर्ष-२५, मई-२०२३

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के शिष्यरत्न पुरुषार्थमूर्ति पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी सम्बन्धित प्रमोदपूर्ण हृदयोद्गार!

...मैं तो ज्ञानस्वरूप हूँ. ज्ञान किसका करे ? और किससे कार्य करवाये ? आ..हा..हा...! चैतन्यहीरा! अनन्त गुणों के पहलू सहित (है), प्रभु ! आ..हा...! वास्तव में तो उसके-जीव के परिणाम जो हो रहे हैं वे भी त्रिकाली ध्रुव से नहीं। आ..हा..हा...! तो पर के परिणाम जीव करे (यह कैसे बने ?)

द्रव्य पर्याय का दाता नहीं और कर्ता (भी) नहीं। आ..हा..हा...! भाई ने-'निहालभाई'ने नहीं लिखा ? 'परिणाम परिणमित हो चुके फिर भी मैं वैसा का वैसा रह गया। लोगों को निश्चयाभास जैसा लगे। लोगों को खबर नहीं। परिणाम की दृष्टि ध्रुव पर है और वे परिणाम बदल गये और मैं तो वैसा का वैसा (रह गया)। मैं माने ध्रुव। आ..हा..हा...! (लोगों को) यह नहीं बैठता। 'निहालभाई' की बात परम सत्य है। लेकिन निश्चयाभास है ऐसा कहकर निकाल दिया !

(कल एक मुमुक्षु) देखने आये थे (वे कहते थे कि), 'आप उन्हें निश्चयाभासी घोषित करे तो हम देखने आये।' कहिये, ठीक ! (दो जन आये और कहा कि) 'निहालभाई' को आप निश्चयाभासी घोषित कीजिये तो हम इस मेले में आ सकते हैं।' अरे...! आओ-नहीं आओ, हमें क्या काम है ? तुमको क्या मतलब है ? वे जहाँ थे वहाँ थे। आ..हा..हा...!

(श्री समाधितंत्र श्लोक-५७-५८, दि. २६-६-७५, प्र.-७२, २५:२४ मिनट पर)

*

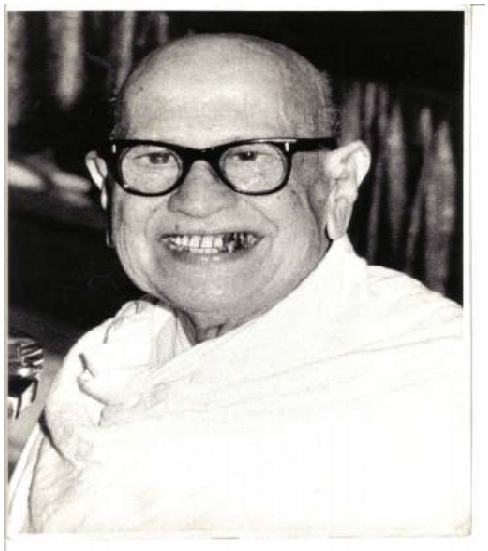

(ज्ञानी को) वीतरागस्वभाव की दृष्टि है इतनी वीतरागता तो दृष्टि की अपेक्षा है, अस्थिरता की अपेक्षा ज्ञानी को राग आता है। आ..हा...! शरीर आदि सजाने का राग आता है। नहाते हैं, सजते हैं। 'निहालभाई' में तो ऐसा आता है (कि), देहत्याग पूर्व नहाये थे। 'निहालभाई'! आता है ? पुस्तक में आया है। देहत्याग की तैयारी थी इसके पहले स्नान किया। आता है, ऐसा विकल्प आता है। आता है ? (श्रोता :- प्रस्तावना में आता है।) हाँ, प्रस्तावना में। है न ? आता है, ऐसा विकल्प होता है। आ..हा..हा...! परन्तु वे उसे दोष जानते हैं। लाभ के लिये करता हूँ, ऐसा नहीं। आ..हा..हा..! करता तो नहीं हूँ लेकिन होता है, वह भी लाभ हेतु नहीं। आ..हा..हा..!

अस्थिरतावश शरीर, वाणी, आहार और पानी की अनुकूलता का राग आता है परन्तु अभिप्राय में उसका स्वीकार नहीं। आ..हा..हा...!

('श्री समाधितंत्र' श्लोक-६१-६२, दि. ३०-६-७५, प्र.-७६, २९:४५ मिनट पर)

*

जैसे पहना हुआ वस्त्र जीर्ण होनेपर समझदार मनुष्य अपने शरीर को जीर्ण हुआ नहीं मानता वैसे अंतरात्मा शरीर जीर्ण होनेपर अपने आत्मा को जीर्ण हुआ नहीं मानता। आहा..हा...! अरे...! पर्याय में पूर्ण हीन (पर्याय) हुई-बहुत हीन (पर्याय हुई) तो इससे ध्रुव हीन हुआ ऐसा मानेगा क्या ? आ..हा..हा...! इसके बजाय शरीर की जीर्णता से आत्मा की जीर्णता (हुई) सो बात कहाँ है ? आ..हा..हा...! धर्मी की दृष्टि ! शरीर पर लक्ष ही कहाँ है ? चाहे लोमड़ी काटे और टुकड़े कर दे (लेकिन) धर्मात्मा की दृष्टि तो आत्मा पर पड़ी है। लोमड़ी शरीर के टुकड़े कर दे तो भी उस वक्त अंदर में तो आनंद का वेदन है ! वह (-लोमड़ी) काटे, और यह आनंद पुष्ट हो ! आ..हा..हा...! उसे और इसे क्या संबंध है ? आ..हा..हा...! वह टुकड़ा अलग हो, यह आनंद की पुष्टि हो ! आ..हा..हा...! चीज ही अलग है। भाई ने लिखा है न ? 'निहालभाई' ! कि, धधकती हुई करोड़ों सुई शरीर में चुभे तो भी ज्ञानी को इसकी चिंता नहीं, क्योंकि उसका मुझे स्पर्श तक नहीं। है न ? 'निहालभाई' में है। धर्मी तो हर समय तैयार ! शरीर में धधकती करोड़ों सुई लगायें तो भी उसे मैं स्पर्शता तक नहीं, उसका मुझे स्पर्श तक नहीं। आ..हा..हा...! जिससे-शरीर (से) मेरा अत्यंत अभाव (है), उसमें-शरीर में हो इससे मुझे क्या ? आ..हा..हा...!

('श्री समाधितंत्र' श्लोक-६३-६५, दि. ०२-०७-७५, प्र.-७८, २९:१० मिनट पर)

*

...पर्याय में परिणमन है सो तो पर्याय का है। 'निहालभाई' में एक जगह आया है कि, परिणामी-अपरिणामी कहे तो... परिणामी-परिणाम ! आता है एक जगह। 'अपरिणामी-परिणाम' (कहिये)। ज़ोर (वह है न) ! परिणाम स्वयं अपरिणामी का लक्ष करता है, इसलिये 'अपरिणामी-परिणाम'। (आता) है ? इस तरफ है। आ..हा...! वस्तुस्थिति है। क्योंकि अपरिणामी को परिणाम ने जब जाना तब 'अपरिणामी-परिणाम' वैसे ! मार्ग ऐसा सूक्ष्म है, भाई ! और सर्वज्ञपंथ में ही ऐसा मार्ग होता है, तीनकाल में अन्य कहीं भी होता नहीं। आ..हा..हा...!

('श्री समाधितंत्र' श्लोक-६५-६६ दि. ०३-०७-७५, प्र.-७९, ०९:२० मिनट पर)

*

...विकल्प उठे वह भी नुकसानकारक है। आ..हा..हा...! भाई ने-'निहालभाई' ने तो यह तक नहीं लिखा? (कि), 'सुननेवाले को नुकसान और

सुनानेवाले को (भी) नुकसान। लिखा है ? दोनों को (नुकसान)। आ..हा..हा...!

('श्री समाधितंत्र' श्लोक-७१-७२, दि. ०९-०७-७५, प्र.-८४, ३४:४५ मिनट पर)

*

...प्रवृत्ति में भी विवेक चाहिये। एक बार तो 'निहालभाई'ने पूछा है कि, विवेक क्या? विवेक को रखो एक ओर ! एक बार ऐसा (कहा) और एक बार ऐसा भी कहा कि, विवेक पहले चाहिये। दो प्रश्न हैं। है, दो प्रश्न हैं। एक जगह विवेक की बात (वैसे कही) है तो दूसरी एक जगह विवेक को स्थापित किया है कि, विवेक आवश्यक है, किन्तु पर्यायबुद्धि नहीं रखनी है, पर्याय पर ज़ोर नहीं देना है, वैसे। है ऐसा एक जगह। कौनसा नंबर है, पता है ? नहीं पता ? प्रश्नों में है। किस जगह प्रश्न है पता है ? हमको तो उतना याद नहीं रहता। न्याय याद रहता है। ऐसा कहीं पर आया था, हं ! आ..हा..हा...!

एक का अर्थ ऐसा कि, ऐसा राग होना चाहिये वरना ऐसा होगा या वैसा होगा। अरे...! जो होगा सो होगा। वैसे भी सम्यग्दर्शन में स्वच्छन्दी राग नहीं होता। उन्हें योग की मर्यादा में ही होता है। परन्तु उसका ज़ोर जाना चाहिये वस्तु पर। जो महा-खान है। उस खान पर नज़र करनी चाहिये। ज़ोर वहाँ जाना चाहिये। पर्याय का विवेक इसके अनुपात में होता है परन्तु ज़ोर पर्याय पर नहीं होना चाहिये। कहीं आता है। दो बोल हैं। एक बोल निकालेंगे तो दूसरा मिल जायेगा। लिख लिया होगा। विवेक का नकार किया है वहाँ भी विवेक का हकार किया है। उसका पता लिखा होगा। है, उसमें बहुत विषय (है)। (समय-४२:१० मिनट पर)

...दो जगह है। देखो ! (बोल) ३५७. देखा ? 'परिणाम का विवेक तो जो अनंत सुखी होना चाहते हैं उनको सहज होना चाहिये।' देखा ? और ६८ वे (बोल में) आता है। वह ना देंगे। 'प्रश्न :- अनुभव होने के बाद परिणाम में मर्यादा आ जाती है न ? विवेक हो जाता है न ?' ऐसा प्रश्न है। 'उत्तर :- विवेक की बात एकबाजू रखो; एक दफा विवेक को छोड़ दो ! (-पर्याय की सावधानी छोड़ दो !) परिणाम मात्र ही 'मैं' नहीं; 'मैं' तो अविचलित खूँटा हूँ; मेरे में क्षणिक अस्तित्त्व है ही नहीं। विवेक के बहाने भी जीव परिणाम में एकत्व करते हैं।' वहाँ ऐसा कहा और यहाँ पर हाँ कही। अपेक्षा से (बात है)। यह हाँ कही है। देखो ! 'परिणाम का विवेक तो जो अनंत सुखी होना चाहते हैं उनको सहज होना चाहिये।' सहज होना चाहिये ! दोनों जगह निशानी की है, हं ! आ..हा...!

('श्री समाधितंत्र' श्लोक-७१-७२, दि. ०९-०७-७५, प्र.-८४, ५२:४५ मिनट पर)

*

...जिसने राग और द्वेष को, विषय-कषायरूपी शत्रु को दूर किया है, ऐसे पुरुष को तो उसका आत्मा ही ध्यान के लिये सच्चा अत्यंत निर्मल आसन है। आ..हा..हा...! 'निहालभाई' ने एक जगह कहा है न ? कि, मैं तो पालथी लगाकर अंदर बैठ जाता हूँ। भाषा ऐसी सरल कर दी है ! पालथी का अर्थ कि, मै तो अंदर में बैठ जाता हूँ। 'पालथी लगाकर' ऐसा (आता) है। (क्या अंदर में) पालथी लगाते होंगे ? इसका अर्थ कि, मेरी पर्याय वहाँ थम जाती है। आ..हा..हा...! लोगों को यह विशेष लगे। वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। पर्याय को द्रव्य में स्थापित करना, उसमें लीन करना उसका नाम पालथी लगाकर बैठ गया, उसका अर्थ वैसा। आसन लगाया ध्रुव में ! वैसे। ऐसा मार्ग कठिन, भाई !

('श्री समाधितंत्र' श्लोक-७३-७४, दि. ११-०७-७५, प्र.-८६, १२:३५ मिनट पर)

*

आ..हा..हा...! तेरे स्वभाव में अतीन्द्रिय आनंद भरा है न ! वह कौन कराये और कौन सिखाये ? कि, स्वयं। आ..हा..हा...! मृग की नाभि में कस्तूरी (है) उसे उसकी खबर नहीं। (यह जीव को) पता चलता है तब स्वयं देखता है कि, ओ..हो...! जहाँ मैं खड़ा हूँ सो तो

पर्याय है और यह पर्याय जिसकी है वह तो महातत्त्व है ! यह पर्याय उसके आधार पर खड़ी है। है ऐसी भाषा ? यह शब्द 'निहालभाई' में है। किसीने ऐसा पूछा कि, 'यह बात न्याय से दिमाग में बैठती है, परन्तु अभी भी ध्रुव स्वभाव की तरफ नहीं जाना होता। इसका क्या कारण ?' आता है उसमें ? आता है। कहीं न कहीं आता है जरूर ! बड़ा समुद्र है ! तब कहते हैं कि, जिस पर्याय में तुझे न्याय से (बात) बैठती है, विकल्प से-न्याय से (समझ में आती है) वह पर्याय किसी के आधार पर खड़ी है कि नहीं ? समझ में आया ? जिस पर्याय में तुझे न्याय से (बात) बैठी वह पर्याय कहाँ है ? किसके आधार पर है ? निश्चय से पर्याय ही पर्याय का आधार वह यहाँ नहीं लेना है। पर्याय जिसके आधार पर रहती है वैसा जो ध्रुव (तत्त्व है) उसका लक्ष कर तो तुझे अनुभव होगा। आ..हा..हा...! पर्याय में यदि यह बात तुझे बैठी तो वह पर्याय किसके आधार पर खड़ी है ? यानी कि, इसका उत्पाद् किसके आधार पर है ? किसके आधार पर ? बिना किसी के आधार पर उत्पाद् हुआ क्या ? जिसके आधार पर पर्याय हुई, खड़ी है, मोजूद है उसका आधार ले ! आ..हा..हा...! ऐसी बात बहुत सूक्ष्म। जीव को करना तो यह है। बाकी सब बातें हैं। आ..हा..हा...!

('श्री समाधितंत्र' श्लोक-७५-७६, दि. १३-०७-७५, प्र.-८८, ०९:३५ मिनट पर)

*

...तीन लोक के नाथ की वाणी सुनना, वह वाणी परद्रव्य है, आ..हा..हा...! उसे सुनने के लक्ष से तो विकल्प है। फिर भी एक जगह ('निहालभाई'ने) ऐसा कहा है न ? भाई ! आचार्य के शब्दों से आनंद का रस टपकता है। वह किस अपेक्षा से ? स्वभाव का आश्रय लेकर जो पढ़े, समझे... आ..हा..हा...! उसको वहाँ आनंद झरता है, ऐसा कहना है। वांचन, श्रवण के वक्त भी धर्मी को तो स्वभाव की शुद्धि की वृद्धि होती ही रहती है। आ..हा..हा...! वह (वांचन, श्रवण) के कारण के नहीं। उस वक्त अपनी शुद्धि पर, ज़ोर है न उस पर ? आ..हा..हा...! परिणाम मेरा ध्यान करो तो करो। मैं क्यों करुँ ? आ..हा...! लोगों को कठिन लगे। उसे (-द्रव्य को) जाने कौन? (तो कहते हैं कि) जानती तो है पर्याय। पर्याय जानती है कि, परिणाम ध्रुव का ध्यान करो तो करो। पर्याय ऐसे जानती है। परन्तु मैं किसका ध्यान करूँ ? 'मैं' मतलब 'ध्रुव'। आ..हा...! ऐसी अटपटी बातों का समाधान नहीं समझे तो जीव को शांति नहीं मिलती परन्तु अशांति का खदबदाहट हुआ ही करता है। आ..हा..हा...!

('श्री समाधितंत्र' श्लोक-७८-७९, दि. १७-०७-७५, प्र.-९२, ०९:४० मिनट पर)

*

'सोगानी' की दृष्टि का ज़ोर द्रव्य पर बहुत था ! दो जगह लिखा है कि नहीं ? यह हमारी पद्धति-द्रव्यप्रधान कथन है। शुरूआत में है। है न ! है ऐसा एक जगह। (पहले पन्ने पर चर्चा में) देखो ! 'अपनी तो यही दृष्टिप्रधान शैली है।' वह शैली। उनको कोई उपदेश तो करना नहीं था। उनको कोई दुनिया में राजी हो और लोग इकट्ठे हो ऐसा तो कुछ करना नहीं था। है न ? प्रश्न है कि, 'आप शुद्ध पर्याय को दृष्टि की अपेक्षा से भिन्न कहते हैं या ज्ञान की अपेक्षा से ? उत्तर :- दृष्टि की अपेक्षा से भिन्न कहते हैं; ज्ञान की अपेक्षा से नहीं।' क्योंकि ज्ञान जानता है ऐसा (कहना है)। दृष्टि में तो भेद नहीं है न ! 'दृष्टि करने के प्रयोजन में भिन्नता का ज़ोर दिये बिना दृष्टि अभेद नहीं होती। इसीलिये दृष्टि की अपेक्षा से ही भिन्न कहते हैं। और अपनी तो यही 'दृष्टिप्रधान' शैली है, सो ऐसे ही कहते हैं।'

(दूसरा) ४३५ है। ४३५ (बोल में) हं ! '(मुझे) द्रव्य का बहुत पक्ष हो गया है...' (यानी कि) हमारा लक्ष-अधिक ज़ोर वहाँ पर है। 'इसलिये कथन में द्रव्य से (द्रव्य की प्रधानता से) ही सब बातें आती हैं।' दो जगह आया न ! (बोल नं.) २ और यह ४३५ वाँ। सो तो यथार्थ है।

('श्री समाधितंत्र' श्लोक-७८, दि. १७-७-७५,

प्र.-९२, २५:२० मिनट पर)

*

...प्रभु! एक समय में परमात्मस्वरूपरूप बिराजमान है ! उसे आत्मा कहते हैं न ? 'नियमसार' की ३८ वीं गाथा में लिया न ! नहीं ? यह ध्रुव, अभेद, शुद्ध चैतन्यघन सो आत्मा। पर्याय को वहाँ नहीं ली। आ..हा..हा...! ऐसा जो भगवान पूर्णस्वरूप चैतन्यदल ! वह पर्याय में नहीं आता। भाई ने दृष्टांत दिया है न ? 'निहालभाई' ने! दर्पण का नहीं दिया ? दर्पण का दृष्टांत दिया है। दर्पण की पर्याय में यह सब भासित होता है। उसका दल जो है वह पर्याय में नहीं आता। आ..हा..हा...! जबकि प्रतिबिंब तो पर्याय में आता है न ? सर्प, कोयला, अग्नि, बर्फ है तो उसकी पर्याय, वह (स्वयं) नहीं परन्तु उसकी पर्याय में भासित होता है। परन्तु पर्याय में पूरा चैतन्यदल नहीं आया। क्योंकि यह तो पलटती दशा है, जबकि वस्तु तो एकरूप है। आ..हा..हा...! यानी कि, पर्याय में दल नहीं, दल तो दल में है। आ..हा..हा...! ऐसा भेदज्ञान जिसको नहीं है वे बंधते हैं, ऐसा कहते हैं।

('श्री समाधितंत्र' श्लोक-७८, दि. १८-०७-७५, प्र.-९३, १०:४५ मिनट पर)

*

...जब योग की परिपक्व अवस्था होती है यानी कि अंदर स्थिर होता है तब जिसको आत्मबुद्धि का अधिक अभ्यास हुआ है, जिसने आत्मस्वरूप की तीव्र भावना की है। भावना नाम एकाग्रता-ऐसे निश्चल आत्मस्वरूप का अनुभव करनेवाले को... चलित न हो ऐसी स्थिरता जहाँ जमी है। आ..हा..हा...! आनंद की घूँट पर घूँट पीये जाता है। भाई ने दृष्टांत दिया है-गन्ने के रस का ! 'निहालभाई' ने ! गन्ना... गन्ना ! तृषा लगी हो (तब) गन्ने का रस जैसे घट... घट... घट... घट... घट... घट... घट... आ..हा..हा...! वैसे अनुभव के काल में गन्ने के रस के माफिक आनंद का घट... घट... (अनुभव होता है)। आ..हा..हा...!

('श्री समाधितंत्र' श्लोक-७८, दि. १८-०७-७५, प्र.-९३, ४८:०० मिनट पर)

*

भगवानआत्मा ! एक-एक प्रदेश में पूर्ण अनंत आनंद की खान... खान है पूरी ! ऐसे असंख्य प्रदेश से व्यापक, अतीन्द्रिय आनंद के रस से परिपूर्ण भरा हुआ प्रभु! उसकी दृष्टि में जब तक जीव नहीं आता तब तक उसका ज्ञान सही नहीं होता और राग से अभावरूप वैराग्य भी उसको नहीं हो सकता। आ..हा...! छः खंड के राज्य में रहा (हो), फिर भी वैरागी होता है। 'निहालभाई' ने तो कहा है न ? चक्रवर्ती छः खंड को साधते हैं ? बाद में (क्या लिखा है ?) अखंड को साधते हैं। वे छः खंड को नहीं साधते, अखंड को साधते हैं। आ..हा..हा...! जिसकी दृष्टि में परमात्मा अखंडस्वरूप जब अंदर अनुभव में आ गया... आ..हा..हा...! वे तो अखंड को साधते हैं। बाहर में भले लड़ाई आदि के प्रसंग हो फिर भी अखंड पर ही उनका साधकपना जमा हुआ है। आ..हा..हा...!

('श्री समाधितंत्र' श्लोक-८२-८३, दि. २१-०७-७५, प्र.-९६, १५:४० मिनट पर)

*

...भाई ने तो एक बार नहीं कहा ? 'निहालभाई' ने! कि, सुनना और सुनाना नुकसान का कारण है। दूसरी जगह ऐसा भी कहा कि, अपने स्वलक्ष से यदि आचार्यों के शब्दों का पठन किया जाये तो वहाँ (आनंद) रस की बूँदें टपकती हैं। देखो ! वहाँ ऐसा कहा है ! आ..हा..हा...!

जिज्ञासा :- दो बात विरुद्ध क्यों आयी ?

समाधान :- विरोध नहीं है। जिसको स्वलक्ष (है वह) जो कुछ सुने या करे उस वक्त लक्ष होने के बावजूद भी विकल्प उठता है वह नुकसानकारक है। विकल्प की अपेक्षा लेकर बात की है। जबकि यहाँ स्वभाव के आश्रयपूर्वक बात चलती है इसमें तो वांचन, श्रवण, मनन होनेपर भी स्व के आश्रय के लक्ष से उसकी शुद्धि की वृद्धि होती है। वह विकल्प के कारण बढ़ती है, सुनने से बढ़ती है सो बात नहीं। आ..हा..हा...! ऐसी बात है, भाई ! थोड़ा-सा भी न्याय अगर बदल गया तो पूरी वस्तु बदल

(अनुसंधान पृष्ठ संख्या १७ पर..)

पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा पुरुषार्थमूर्ति पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी के प्रति प्रमोदपूर्ण हृदयोद्‌गार

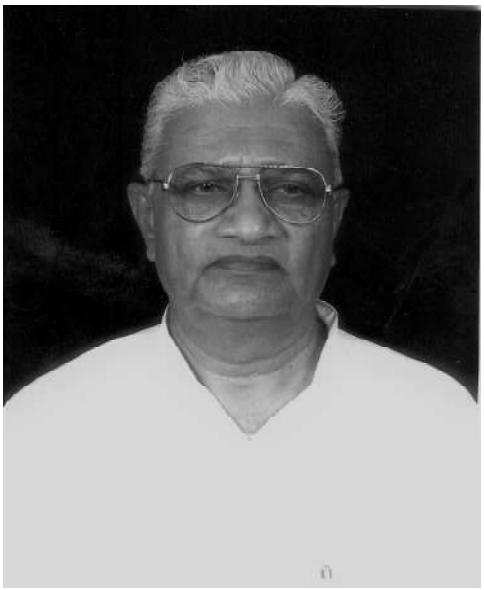

'सोगानीजी' का दृष्टांत देखा जाये तो यह विचारणीय है कि, कहाँ स्वयं 'अजमेर' के दिगम्बर संप्रदाय में थे और उनकी संप्रदाय की मानी हुई क्रिया करते थे। पूजा के पीछे लगे तो छः-छः घंटे पूजा करे, शास्त्र पढ़े तो पूरे दिन शास्त्र पढ़े, ध्यान करे तो पूरा दिन ध्यान में लगे रहे ! पात्रता बहुत तैयार हुई परन्तु वहाँ कोई निमित्त नहीं था। एक 'आत्मधर्म' हाथ में आया। 'षट् आवश्यक नहीं परन्तु एक ही आवश्यक है।' (यह पढ़कर) चोंट लगी।

उनके वचनों में 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश' का जो ६४५वाँ बोल है उसमें एक बात ध्यान खींचे ऐसी है। वे बारंबार ऐसा कहते हैं कि, यह बात सुनते ही चोंट लगनी चाहिये। ऐसा वे क्यों कहते हैं ? (क्योंकि) खुद को जब यह बात पहले-पहल मिली तब उन्हें चोंट लगी थी। कब जीव को चोंट लगती है ? कि, उसकी पात्रता तैयार हुई हो और दर्शनमोह का रस पतला हुआ हो तब चोंट लगती है वरना दर्शनमोह की रज़ाई ओढ़ी हो (उसे) चाहे कितनी भी बातें आये (तो भी) उसका कोई असर नहीं होता, ऐसा है।

मुमुक्षु :- 'आत्मधर्म' तो बहुत लोगों ने पढ़ा होगा।

पूज्य भाईश्री :- लाखों लोगों ने पढ़ा है। लाखों प्रकाशित हो चुके और लाखों लोगों ने पढ़ा है, (परन्तु इन्हें) चोंट लगी। पहले-पहल पढ़ा और चोंट लगी। 'आत्मधर्म' के मुखपृष्ठ पर पूज्य गुरुदेवश्री का फोटो था उसे अर्घ चढ़ाया ! अर्घ तो पूजा का अंग है। क्या है ?

अर्घ तो पूजा का अंग है। यहाँ तो अभी पुस्तक का पता है, साक्षात् भी नहीं। पुस्तक का पन्ना है। इतना तो बहुमान आया है कि, उसी वक्त अर्घ चढ़ाया है !!

मुमुक्षु :- एक आवश्यक है ऐसा कहने के पीछे क्या आशय है ?

समाधान :- एक आवश्यक माने एक आत्मा में अंतर्मुख होना वह एक ही अवश्य कर्तव्य है। आवश्यक का अर्थ होता है - अवश्य करने योग्य। 'क' माने करने योग्य। आवश्यक माने अवश्य। तो अवश्य करने लायक क्या है ? कि, अंतर्मुख होकर आत्मा में अभेद रहना यह एक ही आवश्यक है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि धर्म - यह एक ही आवश्यक है। छः प्रकार के आवश्यक तो व्यवहार में जाते हैं।

ये छः प्रकार के छः विकल्प वह उनके लिये बोझ था। क्या है ? मूल में विकल्प से थके हुए थे कि, ये अष्ट प्रकारी पूजा और छः प्रकार के आवश्यक - ये सब विकल्प मुझे नहीं पुसाते। यदि कोई विकल्परहित चीज हो और उसमें निर्विकल्प भाव से अंदर रहा जाता हो तो ये विकल्प करना पुसाता नहीं है और करने नहीं हैं। ऐसी स्थिति में वे आये थे और ठीक उसी समय यह बात मिल गई। अंदर से इतना स्पष्ट नहीं होता हो, भाव ऐसा रहता हो फिर भी स्पष्टता नहीं होती हो तब कोई कहनेवाला मिले तो जैसे रास्ते का दरवाजा किसीने खोल दिया हो ऐसा लगे ! जैसे कि, अरे...! मैं जिसकी खोज़ कर रहा था यह बात तो इन्होंने की है ! ये तो सीधा रास्ता बताते हैं।

उस वक्त जो अर्घ चढ़ाया उसमें बहुत गहरी बात है। छिछले विचार में वह समझ में नहीं आ सकता। बहुत गहरी बात है। उस वक्त मुमुक्षुजीव को ऐसा लगता है कि, मुझे मेरे तारणहार मिल गये और मैं तिर गया !! दोनों बात उसको दिखती है। मैं तिर गया ऐसा दिखता है! तारणहार सामने हैं और मैं तिर गया, बस ! स्वाहा करके अर्घ चढ़ा दिया। वहाँ अर्घ स्वाहा नहीं किया, पुरे संसार को उन्होंने स्वाहा कर दिया !! ऐसा है।

...वह जो अर्घ चढ़ाया उसमें संकेत है। तब उन्हें गुरुदेवश्री की प्रतीति आ गई, उस वक्त विश्वास आ J¶n& daZmnhb e nhc gvZoA mn^ nd^ mgZ Hkh से हो जाये ? मूल दिगम्बर ! पहले-पहल 'सोनगढ़' आये और व्याख्यान सुना और भावभासन में आ गये हैं। मतलब बात उन्हें वहाँ ('अजमेर' में) चोंट कर गई थी, प्रत्यक्ष तो बाद में हुआ, तब तो परोक्ष था। अब, परोक्ष से तो काम नहीं होता (इसलिये) उन्हें प्रत्यक्ष आने का भाव हुआ। अतः (एक मुमुक्षुभाई को) बोल रखा था कि, 'मुझे आना है, आप जब जायें तब मुझे आना है।' हालाँकि वे तो न आ सके। दिन नक्की किया लेकिन उनको कोई काम आ पड़ा (इसलिये) वे तो वहाँ रह गये और ये ('सोगानीजी') अकेले ही गाड़ी में बैठ गये। क्योंकि वे 'किशनगढ़' से बैठते और ये 'अजमेर' से बैठे। अतः पहले तो उस मुमुक्षु को बैठना पड़ता। उन्होंने टिकट कटवा लिया होगा और आयेंगे तब एक डिब्बे में (साथ-साथ) हो जायेंगे। वे तो नहीं मिले तो कोई बात नहीं। टिकट लिया है हम तो बैठ जाते हैं। उनके नहीं आने की कोई वजह होगी।

('सोनगढ़') आ पहुँचे। (प्रवचन) सुना, (उसमें) आत्मा सुना। 'ज्ञान अने राग जुदां छे' - उस ज्ञान में आत्मा सुना। राग आत्मा से भिन्न है, ऐसे आत्मा को सुना। भिन्न आत्मा को सुना। राग से भिन्न ज्ञानमय आत्मा है ऐसा सुना और उसकी धुन चढ़ गई। वे कहते थे कि, शुरू के पंद्रह दिन कैसे बीत गये, मुझे पता तक नहीं चला ! आत्मा की ऐसी धुन लगी कि, शुरू के पंद्रह दिन तो कैसे बीत गये इसकी खबर तक नहीं रही!!

घर पर कहा नहीं था कि, मैं इस जगह - 'सोनगढ़' जा रहा हूँ। दो-तीन गाँव की बात चली थी। शायद 'मुंबई' जाना पड़े, 'सोनगढ़' भी जाने का विचार है। जाते समय ऐसा नहीं कहा कि, मैं 'सोनगढ़' जा रहा हूँ। व्यापार की वज़ह से खरीदारी हेतु मुंबई' जाना पड़ता,

कोई न कोई काम से बाहरगाँव तो जाना पड़ता। उन दिनों 'मुंबई' में हिन्दु-मुसलमान के बीच दंगा चल रहा था। पंद्रह-पंद्रह दिन बीते फिर भी इनका कोई समाचार नहीं था इसलिये वहाँ सबको चिंता लगी। अतः जहाँ-जहाँ जाने की बात थी वहाँ सब जगह उन लोगोंने तार कर दिये। तार इस प्रकार का था कि, 'आपकी कुशलता के समाचार तार द्वारा भेजिये।' 'सोनगढ़' तार आया तब पता चला। उन लोगोंने दो-तीन जगह तार किये थे वह इसलिये कि, जहाँ होंगे वहाँ से समाचार आ जायेंगे और पता लग जायेगा कि, वे कहाँ है। पंद्रह दिन बाद वे भान में आये !! ठीक ! पंद्रह दिन बाद भान में आये ! ऐसी धुन चढ़ गई थी ! ...इतने दिनों तक पता भी नहीं चला कि, रात कहाँ बीत रही है और दिन कहाँ बीत रहे हैं!? ऐसी धुन में, घोलन में चढ़ गये थे !!

('बहनश्री के वचनामृत' बोल-१५९, १०-७-८७ के प्रवचनमें से, २५:०० मिनट पर)

*

मुमुक्षुः- 'सोगानीजी' को शास्त्र पढ़ने की आदत नहीं थी।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, उन्हें आदत नहीं थी। आदत नहीं थी तो उन्हें बंधन भी नहीं था। एकभवतारी हैं, एक भव में (मोक्ष में) जायेंगे। Certified by Gurudev! 'श्रीमद्जी' ने तो निर्मल सम्यक्ज्ञान से अपना Certificate खुद ने ही प्रसिद्ध कर दिया। यहाँ तो गुरुदेव ने Certificate दे दिया।

दूसरों को तो अपेक्षा हो जाये कि, हमें Certificate मिले तो अच्छा ! परन्तु 'सोगानीजी' की परिस्थिति समझने जैसी है। एक दफा बात की कि, गुरुदेवश्री को पता चले तो बहुत प्रमोद होगा। आपके विषय में गुरुदेवश्री को पता चले कि, ऐसा भी कोई आत्मा निकला, मेरे इतने शिष्योंमें से एक ऐसा भी कोई निकला !! तो गुरुदेवश्री को प्रमोद होगा। इस प्रकार की बात रखते हैं। यह हमारे आपस में हुई चर्चा है। क्या जवाब दिया, देखो ! एक तरफ Certificate की लालच हो इसके बजाय क्या कहा, देखो ! 'अगर गुरुदेव ने जान लिया तो आत्मा को क्या फायदा होगा?' क्या कहा ? सामने प्रश्न किया ! कि, मान लिजीये गुरुदेव ने जाना कि, बहुत अच्छी स्थिति है ! इनकी आत्मस्थिति बहुत अच्छी है !! एक भव में (मोक्ष में) जायेंगे। तो कहा, 'इससे मेरे आत्मा को क्या फायदा होगा?' मेरे आत्मा के लिये यह बात निष्प्रयोजन है। ऐसा कहते हैं, ठीक ! मेरे आत्मा के लिये तो मेरे आत्मा का अवलंबन ही प्रयोजनभूत है, अन्य बातें मेरे आत्मा के लिये प्रयोजनभूत नहीं। देखो! ऐसे जीव को Certificate मिलता है। Certificate की अपेक्षावाले को Certificate नहीं मिलता। इनकी ऐसी स्थिति थी। ये तो सब प्रत्यक्ष परिचय का विषय है।

('बहनश्री के वचनामृत' बोल-२२१, १८-११-८७ के प्रवचनमें से, ४५:०० मिनट पर)

*

'सोगानीजी' का पुस्तक संकलित किया तब एक प्रश्न हमारी चर्चा में चलता था कि, यह व्यक्ति सम्यक्ज्ञानी के रूप में समाज में प्रसिद्ध नहीं है (इसलिये) प्रश्न तो सामने आयेगा। इसलिये इन्हें सम्यक्ज्ञान है ऐसे ज्ञान के प्रमाण इसमें से मिलते हैं कि नहीं ? ऐसे अनेक प्रमाण उनके वचनमें से मिलते हैं कि, जो सूचित करते हैं कि उन्हें सम्यक्ज्ञान था। यह साबित हो सके ऐसी बात है। इसलिये नक्की किया कि, इस चैलेंज का स्वीकार कर लेना ! यदि कोई चैलेंज सामने आये तो उसे उठा लेना ! इसलिये उन दिनों इस दृष्टिकोण से थोड़ा नोटिंग भी किया था, फिर छोड़ दिया। एकबार पुरा पुस्तक देख लिया था।

यह तो सम्यक्ज्ञान की कोई विशिष्टता ऐसी है और उनकी वचन विशिष्टता भी ऐसी थी कि, जिसको अनुभव नहीं हुआ हो उसकी ताकत नहीं है कि,

मुकाबले में सामने आ सके !! लेकिन ऐसी परिस्थिति रही नहीं और हुई भी नहीं।

('परमागमसार' बोल-६८३, दि. २९-९-८४ के प्रवचनमें से, ४०:०० मिनट पर)

*

गुरुदेव का एक प्रसंग (कहता हूँ) 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश' के तीसरे भाग पर प्रतिबंध रखा था कि, यह तो हमारे हाथ से जिसको ठीक लगेगा उसको देंगे। जिसमें से कुछएक पुस्तकें दी गई। फिर पाँच साल का समय व्यतीत हो गया। पाँच साल बाद एक बार अचानक उन्हें याद आया। दोपहर को व्याख्यान के पहले उनके कमरे में जाना हुआ। व्याख्यान में आने में अभी पाँच-दस मिनट की देर थी। इसलिये दर्शन करने, वंदन करने मैं अंदर गया। उन्होंने सामने से पुछा कि, 'ये जो तीसरे भाग की पुस्तकें नहीं देने के हिसाब से बिना बाइन्डिंग किये रखी थी वह कितनी हैं ?' बाइन्डींग की हुई पाँचसौमें से किसी-किसी को उन्होंने दी थी। मैंने कहा 'सोलहसौ बिना बाइन्डिंग की हुई पड़ी हैं।' २१०० छपवाई थी जिसमें पाँचसौ की बाइन्डींग करवाई थी। वे तो अपने हाथों से किसी-किसी को तीनों भाग एकसाथ देते थे। जो करीब-करीब दे चुके थे। (मैंने कहा) 'सोलहसौ हैं।' (फिर उन्होंने पुछा) 'कहाँ है ?' (मैंने कहा) 'हीरालालजी के वहाँ अलमारी में पड़ी हैं।' (गुरुदेव ने पुछा) 'अभी भी पड़ी हैं ?' (मैंने कहा) 'हाँ, पड़ी हैं, परन्तु अब पन्ने पीले पड़ने लगे हैं।' पाँच साल बाद पन्ने तो पीले हो ही जायेंगे। अभी भी बहुत पीले हो जाते हैं। (गुरुदेव ने कहा) 'अच्छा ! शास्त्र की अशातना हो जायेगी, यह तो शास्त्र है।' ऐसे शब्द बोले। 'शास्त्र है और इसकी अशातना हो जायेगी। एक काम कीजिये ब्रह्मचारी बहनों को देना शरू कर दो।' अतः शर्त जो एकदम Tight थी उसे Loose कर दी। 'देने लगो !' फिर दोसौ-दोसौ उनके पास रखना शरू कर दिया। दोसौ खत्म होते ही दूसरे दोसौ, तीसरे दोसौ... फिर तो बहुत छूट से देना शरू कर दिया।

Point इतना ही है कि, भावश्रुतवाले जीव के श्रीमुख से तत्त्वज्ञान का विषय निकले वह द्रव्यश्रुतरूप हो जाता है। उसे द्रव्यश्रुत कहो या शास्त्र कहो (दोनों एकार्थ हैं)।

('परमागमसार' बोल-६९८, दि. ९-१०-८४ के प्रवचनमें से, १५:०० मिनट पर)

आवश्यक सूचना

स्वानुभूतिप्रकाश मासिक पत्रिका समयपर प्राप्ति हेतु जिन लोगोंको (e-copy) - pdf. की अगर आवश्यकता हो तो वे अपना रजिस्ट्रेशन करवाने हेतु निम्न नंबर पर संपर्क करे।
श्री नीरव वोरा - ९८२५०५२९१३

आभार

'स्वानुभूतिप्रकाश' (मई-२०२३, हिन्दी एवं गुजराती) के इस विशेषांक की समर्पण राशि श्रीमती हंसाबहिन अजितभाई शाह एवं श्रीमती मीनाक्षीबहिन विरागभाई शाह की ओर से साभार प्राप्त हुआ है।
अतएव यह पाठकों को आत्मकल्याण हेतु भेजा जा रहा है।

श्री सोगानीजी के संबंध में...
(पूज्य भाईश्री के दि. २९-७-१९९१ के प्रवचनमें से)

मुमुक्षु :- गुरुदेवने उनके बारेमें एकावतारी हैं ऐसा कहा लेकिन उनको खुदको पता लग गया हो ऐसा उल्लेख कहीं आता है ? कि जैसे मैं एकावतारी हूँ !

पूज्य भाईश्री :- उनको खुदको खयालमें नहीं आया, ऐसा खयाल गुरुदेवश्रीको आया है। वे खुद तो इसी भवमें पूर्णता प्राप्तिके प्रयत्नमें लगे हुए थे। हमलोगोंको विशेष परिचय था तो ऐसा लगता था कि, अगर आयुष्य होता तो शायद ऊपरके गुणस्थानमें आ जाते (यानी कि) मुनिदशामें (आ जाते!) बहुत पुरुषार्थ था ! (अगर ऐसा होता) तो इस कालमें भावलिंगी मुनिके दर्शन हो जाते !! लेकिन आयुष्य भी न था और वस्तुतः जो बनना होता है (वही बनता है।) वस्तुस्वरूपमें क्या फर्क पड़ सकता है? लेकिन मुनिदशा ऐसे जीव प्राप्त करते हैं, इतना तीखा पुरुषार्थ था ! बहुत तीखा पुरुषार्थ था!!

मुमुक्षु :- उनका अंगत लिखा हुआ कुछ है ?

पूज्य भाईश्री :- कुछ नहीं मिला है। कोई बात नहीं मिली। एक तो स्वयं किसीके संगमें रहनेके मतमें नहीं थे। किसी साधर्मीके संगमें रहनेके भी मतमें नहीं थे। और गुप्त रहकर अपना काम कर लेना, कोई न जाने वैसे गुप्त रहकर अपना काम कर लेना, इसके अलावा उनका वर्तमान परिस्थितिमें दूसरा कोई अभिप्राय नहीं था। (बाह्य) प्रसिद्धिसे आत्माको क्या लाभ है ? नुकसानका कारण है। नुकसान करे तो निमित्त होता है, न करे तो दूसरी बात है। परंतु जितना मर्यादित समय है, उस मर्यादित समयको एकान्तमें बैठकर ध्यानमें - आत्मध्यानमें विशेषरूपसे लगाना - यह उनकी मुख्य वृत्ति थी। इस वजहसे शास्त्र स्वाध्याय भी कम था। सत्संग तो नहीं था परंतु घरमें शास्त्र स्वाध्याय भी कम था, क्योंकि पुरुषार्थकी कला हस्तगत् थी। इसलिये जितना समय मिले उतना ध्यानमें बैठ जाते। दिन हो चाहे रात हो जितना समय मिले उतना (ध्यानमें बैठ जाते।) उस प्रकारसे काममें लगे रहते।

(आगे पत्रांक - १४में) नहीं आया ! एक ही बारमें अथाहका थाह ले लेना, पन्ना १३ 'पर वाह रे पुरुषार्थ ! तूने साथ रही उग्रताका संकल्प किया, मानो अथाहकी थाह सदैवके लिये एकबारमें ही पूरी ले लेगा।' अथाह माने जिसके नीचे कोई तलवा न हो, मर्यादा न हो, सीमा न हो। 'भले ही सीमा न हो, पूरा

कर दूँगा' एक ही बारमें पुरा कर लेना है ! खुदके पुरुषार्थका प्रकार उनको ऐसा लगता था। वस्तुस्वरूप अन्यथा नहीं होता कि अभी पूर्णता प्राप्त हो जाये। लेकिन वे तो उस बातको गौण करके ही लग गये थे - श्रीमद्जीकी तरह ! इसलिये एकावतारीपना आया, गुरुदेवको ज्ञानमें ऐसा क्यों भासित हुआ ? (उसका कारण यह है)

(गुरुदेवश्रीने) बहुत गंभीरतासे यह बात कही थी। आगे-पीछे कोई चर्चा नहीं चलती थी। मौन होकर चक्कर लगा रहे थे। सुबह १० बजे आहार लेनेके पश्चात् स्वाध्याय मंदिरके हॉलमें थोड़े चक्कर लगाकर फिर अपनी रूममें चले जाते। उस दिन सब मौन थे। कोई बात-चीत नहीं चलती थी। इतनेमें (अचानक) चलते-चलते खड़े रह गये। यहाँसे (भुजा) पकड़कर (कहा था)। भुजासे पकड़ते थे, जब कोई खास बात करनी हो तो हाथ पकड़कर बात करते थे, तो वैसे यहाँसे (हाथ) पकड़ा (फिर कहा) 'देखो ! यह अंदरसे आयी हुई बात है !' बहुत गंभीरतासे (बोले) कि 'देखो ! ये अंदरसे आयी हुई बात है। ये सोगानी है न ! यहाँसे स्वर्गमें गये हैं, वहाँसे निकलकर झपट करेंगे।' खास उनका काठियावाड़ी शब्द है। 'वहाँसे निकलकर झपट करेंगे, हमारे तो चार भव हैं। तीर्थंकरके भवमें तीर्थंकर अरिहंतको नमस्कार नहीं करते। दीक्षा लेते वक्त 'णमो सिद्धाणं' ऐसा उच्चार जब हम करेंगे तब हमारे नमस्कार उनको पहुँचेंगे। क्योंकि उस वक्त वे सिद्धालयमें पहुँच गये होंगे ! बहुत गंभीरतासे ये बात की थी। उनका (सोगानीजीके) पुरुषार्थका प्रकार कैसा था ! उसका परिमाण, माप जिसे कहते हैं, यह गुरुदेवके ज्ञानमें आया है। सीधी बात तो यह है। (पन्ना-१०४)

*

विनम्र अपील

" स्वानुभूतिप्रकाश" मासिक पत्रिका पिछले २५ सालोंसे पूज्य भाईश्री शशीभाई की प्रेरणासे हिन्दी एवं गुजरातीमें मुमुक्षुओंको भेट दी जाती है। जिसमें किसी न किसी पात्र जीवके आत्मकल्याणकी एकमात्र विशाल भावना निहित है।

यदि इस पत्रिका का आपके वहाँ या आपके आसपासके समुदायमें सद्उपयोग न होता हो अथवा संभवित अविनय या अशातना होती नज़र आये तो हमें इसकी जानकारी अवश्य दे या फिर आप पत्रिका एड्रेस समेत हमें वापिस भेज सकते हैं, ताकि हम उसे भेजना बंद कर सके। ट्रस्टकी इस व्यवस्थामें आपका सहयोग अपेक्षित है।

आभार

संपर्क: श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट

श्री नीरव वोरा मो: ९८२५०५२९१३

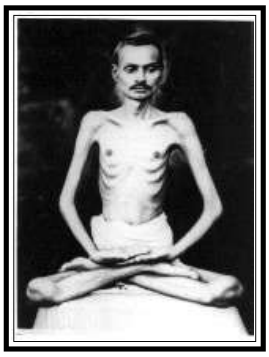

परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी द्वारा लिखित आध्यात्मिक पत्र

पत्रांक ३४२

बंबई, फागुन वदी ६, शनि, १९४८

यहाँ भावसमाधि तो है। आप जो लिखते हैं वह सत्य है। परंतु ऐसी द्रव्यसमाधि आनेके लिये पूर्वकर्मों को निवृत्त होने देना योग्य है।

दुषमकालका बड़ेसे बड़ा चिह्न क्या है? अथवा दुषमकाल किसे कहा जाता है? अथवा किन मुख्य लक्षणोंसे वह पहचाना जा सकता है? यही विज्ञापन है। लि. बोधबीज।

*

पत्रांक ३४३

बंबई, फागुन वदी ७, रवि, १९४८

यहाँ समाधि है।
जो समाधि है वह कुछ अंशोंमें है।
और जो है वह भावसमाधि है।

*

पत्रांक ३४४

बंबई, फागुन वदी १०, बुध, १९४८

उपाधि उदयरुपसे रहती है। पत्र आज पहुँचा है।
अभी तो परम प्रेमसे नमस्कार पहुँचे।

*

पत्रांक ३४५

बंबई, फागुन वदी ११, बुध, १९४८

किसी भी प्रकारसे सत्संगका योग हो तो वह करते रहना, यह कर्तव्य है, और जिस प्रकारसे जीवको ममत्व विशेष हुआ करता हो अथवा बढ़ा करता हो उस प्रकारसे यथासंभव संकोच करते रहना, यह सत्संगमें भी फल देनेवाली भावना है।

*

पत्रांक ३४६

बंबई, फागुन वदी १४, रवि, १९४८

सभी प्रश्नोंके उत्तर स्थगित रखनेकी इच्छा है।
पूर्वकर्म शीघ्र निवृत्त हो, ऐसा करते हैं।
कृपाभाव रखिये और प्रणाम स्वीकार कीजिये।

प्रत्रांक ३४७

बंबई, फागुन वदी ३०, सोम, १९४८

आत्मस्वरूपसे हृदयरूप विश्राममूर्ति श्री सौभाग्यके प्रति,

हमारा विनययुक्त प्रणाम पहुँचे।

यहाँ प्राय: आत्मदशासे सहजसमाधि रहती है। बाह्य उपाधिका योग विशेषत: उदयको प्राप्त होनेसे तदनुसार प्रवृत्ति करनेमें भी स्वस्थ रहना पड़ता है।

जानते हैं कि जो परिणाम बहुत कालमें प्राप्त होनेवाला है वह उससे थोड़े कालमें प्राप्त होनेके लिये वह उपाधियोग विशेषत: रहता है।

आपके बहुतसे पत्र हमें मिले हैं। उनमें लिखी हुई ज्ञानसंबंधी वार्ता प्राय: हमने पढ़ी है। उन सब प्रश्नोंके उत्तर प्राय: नहीं लिखे गये हैं, इसके लिए क्षमा करना योग्य है।

उन पत्रोंमें प्रसंगात् कोई कोई व्यावहारिक वार्ता भी लिखी है, जिसे हम चित्तपूर्वक पढ़ सके ऐसा होना विकट है। और उस वार्तासंबंधी प्रत्युत्तर लिखने जैसा नहीं सूझता है। इसलिये उसके लिये भी क्षमा करना योग्य है।

अभी यहाँ हम व्यावहारिक काम तो प्रमाणमें बहुत करते हैं, उसमें मन भी पूरी तरह लगाते हैं, तथापि वह मन व्यवहारमें नहीं जमता, अपनेमें ही लगा रहता है, इसलिये व्यवहार बहुत बोझरुप रहता है।

सारा लोक तीनों कालमें दु:खसे पीड़ित माना गया है, और उससें भी जो चल रहा है, वह तो महा दुषमकाल है; और सभी प्रकारसे विश्रांतिका कारणभूत जो 'कर्तव्यरूप श्री सत्संग' है, वह तो सभी कालमें प्राप्त होना दुर्लभ है। वह इस कालमें प्राप्त होना अति-अति दुर्लभ हो यह कुछ आश्चर्यकारक नहीं है।

हम कि जिनका मन प्राय: क्रोधसे, मानसे, मायासे, लोभसे, हास्यसे, रतिसे, अरतिसे, भयसे, शोकसे, जुगुप्सासे या शब्द आदि विषयोंसे अप्रतिबद्ध जैसा है; कुटुंबसे, धनसे, पुत्रसे, 'वैभवसे' स्त्रीसे या देहसे मुक्त जैसा है; ऐसे मनको भी सत्संगमें बाँध रखनेकी अत्यधिक इच्छा रहा करती है; ऐसा होनेपर भी हम और आप अभी प्रत्यक्षरुपसे, तो वियोगमें रहा करते हैं यह भी पूर्व निबंधनके किसी बड़े प्रबंधके उदयमें होनेके कारण सम्भव है।

ज्ञानसंबंधी प्रश्नोंके उत्तर लिखवानेकी आपकी अभिलाषाके अनुसार करनेमें प्रतिबंध करनेवाली एक चित्तस्थिति हुई है जिससे अभी तो उस विषयमें क्षमा प्रदान करना योग्य है।

आपकी लिखी हुई कितनी ही व्यावहारिक बातें ऐसी थीं कि जिन्हें हम जानते हैं। उनमें कुछ उत्तर लिखने जैसी भी थीं। तथापि मन वैसी प्रवृत्ति न कर सका इसलिये क्षमा करना योग्य है।

*

प्रशममूर्ति भगवती पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन के पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी सम्बन्धित हृदयोद्गार

प्रश्न :- 'निहालभाई' कहते हैं कि, विचार कोई साधन नहीं है। वस्तु प्रत्यक्ष पड़ी है, उसमें प्रसरकर बैठ जा। तो यह वस्तु प्रत्यक्ष है माने क्या ?

उत्तर :- वस्तु तो प्रत्यक्ष ही है न... तुम स्वयं ही हो। विचार प्रथम होते हैं जरूर, जो विचार वस्तु का निर्णय करने के लिये, प्रमाण-नय आदि के विचार होते हैं परन्तु वे साधन नहीं और विचारों में अटकता रहे तो वस्तु प्राप्त नहीं होती।

*

'निहालभाई' कहते हैं कि, 'पर्याय मेरा ध्यान करो तो करो, मैं किसका ध्यान करुँ ?' यह बात द्रव्य को लक्ष में रखकर की है, अपनी धुन की बात कही है। द्रव्यदृष्टि का बल आता है वह वेदन में आता है।

*

'श्रीमद्' कहते हैं कि, आँख से रेत उठवाना वह स्वभाव से विभाव कराने के बराबर है और 'निहालभाई'ने (कहा कि) स्वभावमें से बाहर निकलना वह भट्ठी लगती है। दोनों में एक ही भाव है। 'भट्ठी जैसा कहना' वह 'आँख से रेत उठवाने' जैसा है। भाषा की कथन पद्धति अलग-अलग है।

*

प्रश्न :- 'वस्तु विचारत ध्यावते मन पावे विश्राम, रस स्वादत सुख ऊपजे, अनुभव ताको नाम' इसमें तो वस्तुविचार से अनुभव होता है ऐसा कहा जबकि, 'निहालभाई' विचार की मना करते हैं तो क्या समझना ?

उत्तर :- यहाँ भी 'मन पावे विश्राम' ऐसा लिया है न ? अर्थात् विचार से मन छूटता है तब अनुभव होता है। विचार से अनुभव नहीं होता। अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आता है तब मन भी छूट जाता है तो सिर्फ विचार करने से वस्तु कैसे प्राप्त हो सकती है ? मन से वस्तु उस पार है।

*

प्रश्न :- 'श्रीमद्जी' में आता है कि, 'आत्मभ्रांति सम रोग नहि... औषध विचार ध्यान' इसमें क्या कहना चाहते हैं ?

उत्तर :- हाँ, आता है कि, प्रथम भुमिका में विचार होता तो है परन्तु वह साधन नहीं है। 'निहालभाई' कहते हैं कि, अन्दर में प्रसर जा। स्व में प्रसर जाना वही विधि और कला है। प्राथमिक भूमिका में सब आता है, होता है बाद में छूट जाता है। (दि. १२-४-७२)

*

प्रश्न :- 'निहालभाई' कहते हैं कि, 'ज्ञानी छः खंड को नहीं लेकिन अखंड को साधते हैं।' इसका मतलब क्या?

उत्तर :- ज्ञानी की अखंड पर दृष्टि कायम रहती है। चाहे किसी भी कार्य में बाहर लगे हो फिर भी दृष्टि तो अखंड पर पड़ी है। अखंड पर दृष्टि न रहे तो आत्मदशा रहे नहीं। दृष्टि अखंड पर है इसलिये छः खंड को नहीं अपितु अखंड को साधते हैं, ऐसा कहा है। लड़ाई के समय भेदज्ञान की परिणति चालू ही रहती है। दिखता भले ही हो कि,

छः खंड साधते हैं, राज-काज में प्रवृत्ति है परन्तु उस वक्त भी अखंड को ही साधते हैं। (दि. २९-४-७२)

*

प्रश्न :- 'निहालभाई' कहते हैं परिणति प्रवेश करती, रमती, उघड़ती है, इसका मतलब क्या ?

उत्तर :- यह तो परिणाम अंदर जाये उसकी बात है। परिणति अंदर जाती है तब उघड़ती जाती है। रमती जाती है मतलब स्वरूप में रमणता होती है। और प्रवेश करना मतलब 'सर्व गुणांश वह सम्यक्त्व' (इस प्रकार) प्रवेश होनेपर सर्व गुणों की निर्मल पर्याय सम्यक्रूप होती है। (दि. २९-७-७४)

*

प्रश्न :- 'निहालभाई' ने कहा कि, देव-शास्त्र-गुरु सब पर हैं, पर हैं माने क्या ?

उत्तर :- देव-गुरु-शास्त्र पर हैं - उसमें सर्वस्वता नहीं है। अपने चैतन्य की सर्वस्वता है। किसी न किसी प्रकार की घुन होगी सो कहा है। उन्हें इस प्रकार की घुन रहती थी। 'प्रवचनसार' में आचार्यदेव को केवलज्ञान की कैसी घुन है ! और क्षयोपशमज्ञान की निंदा की है। 'समयसार' में आचार्यदेव को ज्ञायकभाव की धुन है। 'नियमसार' में परमपारिणामिकभाव की घुन है।

*

प्रश्न :- 'निहालभाई' में आता है कि, पर्याय में खड़े रहकर विचार मत कर, अंदर में जा। तो इसमें क्या कहना चाहते हैं ?

उत्तर :- तु अंदर में जा, पर्याय में खड़े रहकर विचार करता रहा तो अंदर नहीं जा सकेगा, तेरी दृष्टि को पलट, पुरुषार्थ करके द्रव्य को पकड़ ले।

*

'निहालभाई' ने तो तत्त्व की बात एकदम स्पष्टरूप से खुल्ली कह दी है। शुभभाव में, भक्ति में, क्रिया में इससे लाभ माने ऐसा काल नहीं रहा। अभी तो कोई पुण्य से धर्म नहीं मानता। क्रियाकांड धर्म का साधन नहीं है। पुज्य गुरुदेवश्री के प्रताप से तत्त्व की धुन जमी है। (दि. ४-९-७४)

*

(पृष्ठ संख्या ०७ से आगे...)

जाये ऐसा है।

('श्री समाधितंत्र' श्लोक-८४-८५, दि. २२-०७-७५, प्र.-९७, २८:१५ मिनट पर)

*

...जैसे शरीर मेरा, राग मेरा (मानता है) वैसे खुला हुआ परलक्षी ज्ञान है वह मेरा - ये सब देहात्मबुद्धि है। समझ में आया ? भाई में - 'निहालभाई' में तो एक शब्द है कि, ज्यों-ज्यों क्षयोपशम बढ़ता जाता है त्यों-त्यों इसका मद बढ़ता जाता है - एक जगह है। अभिमान बढ़ता जाता है कि, मैंने इतना किया... मैंने इतना किया, इतना मुझे आता है, दूसरे की अपेक्षा मेरे में इतनी विशेषता है, ऐसा सूक्ष्मरूप से इसका मद चढ़ जाता है। आ..हा..हा...! समझ में आया ? वह भी देहात्मबुद्धि है। आ..हा..हा...! भाई ! मार्ग बहुत निराला...! आ..हा..हा...!

('श्री समाधितंत्र' श्लोक-९३-९४, दि. ०२-०८-७५, प्र.-१०८, १९:०० मिनट पर)

*

द्रव्यदृष्टि प्रकाशमें से पूज्य सोगानीजीके दृष्टिका परिणमन एवं दृष्टिका विषय दर्शाते हुए वचनामृत

प्रश्न :- आप शुद्ध पर्याय को दृष्टि की अपेक्षा से भिन्न कहते हैं या ज्ञान की अपेक्षा से ?

उत्तर :- दृष्टि की अपेक्षा से भिन्न कहते हैं; ज्ञान की अपेक्षा से नहीं। दृष्टि करने के प्रयोजन में भिन्नता का जोर दिये बिना दृष्टि अभेद नहीं होती; इसलिये दृष्टि की अपेक्षा से ही भिन्न कहते हैं। और अपनी तो यही 'दृष्टिप्रधान' शैली है, सो ऐसे ही कहते हैं। २.

*

सिद्ध (पर्याय) से भी मैं अधिक हूँ; क्योंकि सिद्ध (दशा) तो एक समय की पर्याय है; और मैं तो ऐसी-ऐसी अनंत पर्यायों का पिण्ड हूँ। ७.

*

जैसे मेरुपर्वत अडिग है; 'मैं' भी (स्वभाव से) वैसे ही अडिग हूँ। मेरु में तो परमाणु आते-जाते हैं; लेकिन मेरे में तो कुछ भी आता-जाता नहीं - ऐसा 'मैं' अडिग हूँ। ८.

*

'मैं वर्तमान में ही मुक्त हूँ, आनंद की मूर्ति हूँ, आनंद से भरचक समुद्र ही हूँ' - ऐसी दृष्टि हो, तो फिर मोक्ष से भी प्रयोजन नहीं; मोक्ष हो तो हो, न हो तो भी क्या ? (पर्याय की इतनी गौणता द्रव्यदृष्टि में हो जाती है।)

मेरे को तो वर्तमान में ही आनंद आ रहा है फिर पर्याय में तो मोक्ष होगा ही ! (- ऐसी प्रतीति आ जाती है।) लेकिन मेरे को तो उससे भी प्रयोजन (दृष्टि) नहीं। ९.

*

द्रव्यदृष्टि की अपेक्षा से तो शुद्धपर्याय भी परद्रव्य है। जब मेरे अस्तित्व में वो (शुद्धपर्याय) नहीं तो फिर राग की तो बात ही क्या ? (द्रव्यदृष्टि की अपेक्षा अर्थात् द्रव्यस्वभाव में अहंभावरूप श्रद्धा का परिणमन होना। ऐसी श्रद्धा होनेपर ही पर्याय शुद्ध होती है परंतु श्रद्धा उसमें अहंभाव नहीं करती।) ११.

*

पर्याय में तीव्र अशुभपरिणाम हो या उत्कृष्ट से उत्कृष्ट शुद्धपर्याय हो 'मेरे' में (एकरूप द्रव्यस्वभाव में) कुछ भी बिगाड़-सुधार नहीं होता, 'मैं' तो वैसा का वैसा ही हूँ। १२.

*

(द्रव्यदृष्टि के जोर में :) केवलज्ञान से भी हमारे प्रयोजन नहीं; मोक्ष से भी प्रयोजन नहीं; वो तो हो ही जाता है। १३.

*

पूज्य निहालचंद्र सोगानीजीके ११२ वे मंगलकारी जन्मोत्सवकी खुशहालीमें उनके पत्र एवं d MZm¥mh H$mJ g§V 'द्रव्यद्रष्टि प्रकाश' एवं उस पर पूज्य भाईश्री शशीभाई के प्रवचनोंका सेट (भाग-१,२) जिज्ञासुओं को ट्रस्ट द्धारा भेंट दिए जायेंगे।

पुस्तक परिचय

'गुरु गिरा गौरव'= गुरु वाणीका गौरव

पूज्य सोगानीजीने पूज्य गुरुदेवश्रीके एक ही प्रवचन की फलश्रुति सम्यक्दर्शन को प्राप्त करके श्रीगुरु का गौरव बढ़ाया अतः पुस्तक का नाम 'गुरु गिरा गौरव' रखा है।

इन पुस्तको में पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा द्रव्यद्रष्टि प्रकाश पर हुए विभिन्न प्रवचन प्रकाशित किए गये है। वे स्वयं श्री सोगानीजी के निकट परिचयी रहे थे एवं द्रव्यद्रष्टि प्रकाश का संकलन भी उन्होंने किया था, अतः सोगानीजी की उग्र पुरुषार्थ की परिणति व उत्कृष्ट गुरुभक्ति को यथार्थरूप से समझने में ये प्रवचन उपकारभूत होंगे।

संपर्क
श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट
श्री नीरव वोरा मो: ●९८२५०५२९१३

REGISTERED NO. : BVHO - 253 / 2021-2023
RENEWED UPTO : 31/12/2023
R.N.I. NO. : 69847/98
Published : 10th of Every month at BHAV.
Posted at 10th of Every month at BHAV. RMS
Total Page : 20

... दर्शनीय स्थल...

'गुरु गौरव'

सोनगढ़

स्वत्वाधिकारी श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट की ओर से मुद्रक तथा प्रकाशक श्री राजेन्द्र जैन द्वारा अजय ऑफसेट, १२-सी, बंसीधर मिल कम्पाउन्ड, बारडोलपुरा, अहमदाबाद-३८० ००४ से मुद्रित एवम् ५८० जूनी माणिकवाडी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग, भावनगर-३६४ ००१ से प्रकाशित
सम्पादक : श्री राजेन्द्र जैन -09825155066

Printed Edition :
Visit us at : http://www.satshrut.org

If undelivered please return to ...
Shri Shashiprabhu Sadhana Smruti Mandir
1942/B, Shashiprabhu Marg, Rupani,
Bhavnagar - 364 001

mahajanSS 9374825041